दैनिकभास्कर

Date: 09-09-26

अदालत की कठोर टिप्पणी सही समय पर सामने आई है

संपादकीय

नोएडा में इसी साल न्यूनतम वेतन में वृद्धि को लेकर हुए श्रमिक आंदोलन में एक युवा एक्टिविस्ट छात्रा को एनएसए के तहत जेल में डालने के प्रशासनिक कदम पर इलाहाबाद हाईकोर्ट की दो सदस्यीय पीठ ने गम्भीर टिप्पणी करते हुए आरोपी को जमानत दी है। कोर्ट ने कहा कि ऐसी अफसरशाही ज्यादतियां ही किसी शासन व्यवस्था को जॉर्ज ओरवेल द्वारा वर्णित डिस्टोपियन स्टेट (निरंकुश शासन) बना देती हैं। ओरवेल ने '1984' शीर्षक वाले अपने उपन्यास में ऐसे शासन का भी जिक्र किया था, जिसमें जनता की सोच पर भी 'थॉट पुलिस' के जरिये पहरा लगाया जाता था। कोर्ट ने जिले के डीएम से लेकर एसएचओ तक सभी अधिकारियों की पगार से पांच लाख की राशि आरोपी को देने और साथ ही डीएम की पंजिका में कोर्ट की नाराजगी दर्ज करने को कहा है। कोर्ट ने इन अफसरों को याद दिलाया कि उनकी निष्ठा संविधान के प्रति होनी चाहिए, न कि सत्ता के प्रति प्रशासन ने श्रमिक आंदोलन के बाद आरोप लगाया था कि घटना के तार पाकिस्तान से जुड़े थे। नोएडा मामले में छात्रा के अलावा एक 60 वर्षीय पत्रकार- जो सोशल एक्टिविस्ट भी हैं- को भी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा बताते हुए जेल में डाल दिया गया था। वे अभी भी जेल में ही हैं। एक स्थानीय स्तर के, वेतन वृद्धि से सम्बंधित श्रमिक-प्रदर्शन को इतना बड़ा स्वरूप देने पर प्रशासन की देश भर में निंदा हुई थी। जंतर-मंतर आंदोलन, दिल्ली में इमारत ढहने से होस्टल के युवाओं की मौत और छात्रा पर रासुका लगाना- इन सभी घटनाओं को एक क्रम में देखना होगा।

Date: 09-09-26

दुनिया का नया नक्शा हमारी धारणाओं को भी बदलता है

प्रियदर्शन, (लेखक और पत्रकार)

4 सितम्बर को संयुक्त राष्ट्र ने दुनिया का नया नक्शा मंजूर किया। इस पर मतदान में 164 देशों ने मुहर लगाई, छह देश मतदान से अलग रहे, जबकि अमेरिका ने विरोध में मत दिया। भारत ने भी इस नक्शे के पक्ष में वोट दिया। लेकिन अब यह बात सामने आ रही है कि इस नक्शे में भारतीय राष्ट्र-राज्य की सीमारेखाओं के साथ

छेड़छाड़ है। असम से लगती अरुणाचल प्रदेश की दक्षिणी सीमा को 'चीनी रेखा' की तरह दिखाया गया है और नगालैंड-असम के बीच की रेखा गुम है। वहीं तिब्बत को भारतीय रेखा में दिखाया गया है। चीन ने भी इस नक्शे को मंजूरी दी है। भारत का कहना है कि वह समान-विश्व की भावना के साथ है और इसी के अनुरूप नक्शे का समर्थन किया है। लेकिन यह विवाद बताता है कि दुनिया का नक्शा बनाना आसान नहीं है।

वैसे भी धरती गोल है और रेखाविहीन है। दरअसल अब तक दुनिया का जो नक्शा चल रहा था, उसे सोलहवीं सदी में नक्शानवीस गेरार्डस मेर्काटर ने समुद्री यात्राओं को ध्यान में रखते हुए बनाया था। इस नक्शे में अफ्रीका एक-तिहाई छोटा है। यूरोप, उत्तर अमेरिका, ग्रीनलैंड बड़े दिखाए गए हैं, जबकि दक्षिण-पूर्व एशिया के देश भी अपने असल अनुपात से काफी कम जगह पा सके हैं। अफ्रीका में इस नक्शे को बदलने के लिए आंदोलन चला और अंततः संयुक्त राष्ट्र की आमसभा ने मतदान से नया नक्शा मंजूर कर लिया। यह नया नक्शा 2018 में नॉर्थ अमेरिकन कार्टोग्राफिक इन्फॉर्मेशन सोसाइटी की कॉन्फ्रेंस में प्रस्तुत "इक्वल अर्थ मैप' है। इसमें यूरोप पहले के मुकाबले सिकुड़ा हुआ है, ब्राजील फूला हुआ है और ग्रीनलैंड जैसे गुम हो चुका है। अफ्रीका को इसमें पूरी नुमाइंदगी मिली है।

लेकिन इस पर हुए विवाद ने याद दिलाया है कि दुनिया का नक्शा बदलता रहा है। कागजों पर बना जो एटलस हमारे दिमाग में छपा हुआ है, वह भी बहुत पुराना नहीं है। हम बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों के नक्शे से आज के नक्शे का मिलान करें तो हैरान रह जाएंगे कि दुनिया के ताकतवर मुल्क कहां चले गए और कौन-से नए मुल्क नक्शे में उठ खड़े हुए? बीसवीं सदी के प्रारंभिक 15 वर्षों के नक्शे में सोवियत संघ नहीं था, जो अचानक दुनिया की बड़ी ताकत बना और आखिरी दशक आते-आते लुप्त भी हो गया। बीसवीं सदी के ही पहले चार दशकों तक पाकिस्तान नहीं था और सात दशकों तक बांग्लादेश नहीं था। बीसवीं सदी के प्रारंभ में जो भारत था, उसकी सरहदें ईरान को छूती थीं। उसके पहले की शताब्दियों का कोई विश्व-यात्री पैदल चलता हुआ इस सदी में चला आए तो पहचान ही नहीं पाएगा कि जिस दुनिया से वह गुजरा था, वह कौन-सी थी।

यानी जिन सीमाओं को हम बिल्कुल ऐसे स्थायी मानते हैं, जैसे वे सभ्यता के उषाकाल से चली आ रही हों, वे दरअसल विकास के अलग-अलग दौर की राजनीतिक उथल-पुथल का परिणाम हैं। सभ्यताएं मुल्कों के राजनीतिक नक्शों से बड़ी और पुरानी होती हैं। इंसानी सरोकार भी उस राजनीति से बड़े होते हैं, जो अकसर अपने स्वार्थों के लिए तमाम पहचानों का इस्तेमाल करती है और उन्हें आपस में लड़ाती भी है- फिर चाहे वे मुल्क हों या फिर मजहब हों। नया नक्शा बाध्यकारी नहीं है। यानी इसकी वजह से न मेर्काटर का मानचित्र मिटने वाला है, न पुराने ग्लोब तोड़े जाने हैं। वे जहाजों की आवाजाही के लिहाज से अब भी कारगर हैं। लेकिन संयुक्त राष्ट्र दुनिया भर की सरकारों, स्कूलों और अंतरराष्ट्रीय निकायों से अपील करने वाला है कि वे जब भी स्थानों की तुलना करें तो नए नक्शे के हिसाब से करें। यानी अब हमारे पास दुनिया को देखने के दो चश्मे होंगे, जो याद दिलाते रहेंगे कि न तो दुनिया इकहरी है और न ही हमारी नजर इकहरी होनी चाहिए। लेकिन हमें इस नक्शे में अपने हिस्से सुरक्षित-स्वीकृत चाहिए, यह निर्विवाद है।

Date: 09-09-26

अलग ढंग से सोचना ही हमारी ताकत है, लेकिन एआई से उसे खतरा

राजकुमार जैन, (एआई विशेषज्ञ एवं स्वतंत्र लेखक)

हमारी सबसे बड़ी ताकत हमारी सोच की विविधता रही है। इतिहास गवाह है कि हर बड़ी खोज के पीछे किसी न किसी ऐसे व्यक्ति की आवाज रही है, जिसने अपने समय की स्वीकृत मान्यताओं पर प्रश्न उठाने का साहस किया। लेकिन एआई के युग में यह प्रश्न हमारे सामने खड़ा हो रहा है कि कहीं यह तकनीक हमारे ज्ञान की विविधता को समाप्त तो नहीं कर रही?

आज हम क्या पढ़ते हैं, क्या खोजते हैं, किन विचारों तक पहुंचते हैं और किस प्रकार के उत्तरों को स्वीकार करते हैं, इन सब पर एल्गोरिदम का प्रभाव है। विडम्बना यह है कि जिस डिजिटल संसार को कभी मानव-अनुभवों, भाषाओं, संस्कृतियों और विचारों का विशाल महासागर माना गया था, वही अब धीरे-धीरे मशीनों द्वारा निर्मित सामग्री से भरता जा रहा है। डिजिटल संसार अब मौलिक चेतना नहीं, एल्गोरिदमिक प्रणालियों द्वारा संचालित हो रहा है। हम ऐसी ज्ञान-प्रणाली रच रहे हैं, जो अपनी ही नींव को खोखला कर रही है।

लार्ज लैंग्वेज मॉडल्स जिस डेटा पर विशाल मात्रा में प्रशिक्षित होते हैं, वह डिजिटल परिवेश भी अब उन्हीं के द्वारा पूर्व में उत्पन्न की गई कृत्रिम सामग्री से भरता जा रहा है। शोधकर्ता इस आत्मघाती चक्र को "मॉडल ऑटोफैगी' की संज्ञा देते हैं। इस अवस्था में कोई प्रणाली अपने ही डेटा का उपभोग करने लगती है। इससे ज्ञान की विविधता और मौलिकता धीरे-धीरे कम हो जाती है।

यह स्थिति कुछ वैसी ही है, जैसे प्रकृति में जैव-विविधता समाप्त होने पर पारिस्थितिकी-तंत्र कमजोर हो जाता है। एक जंगल इसलिए मजबूत होता है, क्योंकि उसमें अनेक प्रकार के पेड़-पौधे, जीव-जंतु और जैविक प्रक्रियाएं मौजूद होती हैं। लेकिन यदि वह एक ही प्रकार के पेड़ों पर निर्भर हो जाए, तो एक बीमारी पूरे तंत्र को नष्ट कर सकती है। ज्ञान की दुनिया भी ऐसी ही है।

जब भावी पीढ़ियों के मॉडल मशीन-जनित डेटा पर बारम्बार पुनरावृत्त होते हैं, तो ज्ञान की मूल जीवंतता, भाषाई नमी और सूक्ष्मता समाप्त होने लगती है। दीर्घकालिक रूप में यह "मॉडल कोलैप्स' अर्थात बौद्धिक पतन का कारण बनता है, जहां मशीन की प्रतिक्रियाएं अत्यधिक रूखी, गैर-रचनात्मक और त्रुटिपूर्ण हो जाती हैं। एआई प्रणाली अपने ही गढ़े प्रतिमानों से सीखते हुए वास्तविक दुनिया की जटिलताओं को खोने लगती है।

इतिहास में कई बार ऐसे विचारों को प्रारम्भ में अस्वीकार किया गया था, जिन्होंने बाद में दुनिया बदल दी। पेट के अल्सर के बारे में लंबे समय तक माना जाता रहा कि इसका कारण केवल जीवनशैली और तनाव है। बाद में वैज्ञानिकों ने दिखाया कि हेलिकोबैक्टर पाइलोरी नामक बैक्टीरिया इसकी बड़ी वजह हो सकता है। शुरुआत में इस विचार को संदेह की दृष्टि से देखा गया, लेकिन अंततः इसी खोज को 2005 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यही विज्ञान की सुंदरता है, वह असहमति और नए विचारों से आगे बढ़ता है।

1840 के दशक में आयरलैंड का अकाल केवल प्राकृतिक आपदा नहीं था। सम्पूर्ण कृषि व्यवस्था एक ही आनुवंशिक प्रजाति पर निर्भर हो गई थी, जिसके कारण एक फफूंद-संक्रमण ने लाखों लोगों को भुखमरी और विस्थापन की त्रासदी में धकेल दिया। एआई की दुनिया भी ऐसे ही डिजिटल मोनोकल्चर की ओर बढ़ रही है।

यदि भविष्य की सूचना-व्यवस्था केवल उन्हीं विचारों को बढ़ावा देने लगे जो पहले से लोकप्रिय हैं, तो नए और असुविधाजनक प्रश्न धीरे-धीरे गायब हो सकते हैं। सबसे बड़ा खतरा गलत जानकारी का नहीं, विचारों की एकरूपता का है। हमारी असली ताकत अलग सोचने की क्षमता में है और इसे ही हमें एआई के युग में सहेजकर रखना होगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 09-09-26

प्रसंस्करण क्षमता जरूरी

संपादकीय

भारत क्रिटिकल मिनरल्स यानी महत्त्वपूर्ण खनिजों के क्षेत्र में उत्पादन क्षमता विकसित करने की कोशिश में है और निजी खननकर्ता भी संसाधन समृद्ध अफ्रीका में ग्रेफाइट, कोबाल्ट, लीथियम, टिन, टैंटलम और टंगस्टन के खनन उपक्रमों, स्थानीय साझेदारियों और संयुक्त उपक्रमों की मदद से अपनी दखल मजबूत कर रहे हैं। ये प्रयास भारत की महत्त्वपूर्ण खनिज रणनीति में एक कम उपयोग किए गए माध्यम की ओर संकेत करते हैं। वह है निजी क्षेत्र और प्रवासी खनिकों का नेटवर्क जो विदेशों में जोखिम उठाने को तैयार है। हालांकि इसे मजबूत संस्थागत और राजनयिक सहयोग की आवश्यकता है। हाल ही में इस समाचार पत्र की एक रिपोर्ट ने दिखाया कि एक उद्यमशील विदेशी खनन पारिस्थितिकी तंत्र भारतीय राज्य के वित्तपोषण पर निर्भर हुए बिना उभरा है। इसलिए सरकार को इन कंपनियों को रणनीतिक साझेदार के रूप में देखना चाहिए। खनन कंपनियों को मुख्यतः राजनयिक सहयोग, मेजबान सरकारों से निपटने में मदद और भारतीय निर्माताओं के साथ मज़बूत संबंधों की

आवश्यकता है। चीन ने दशकों से इस तरह के दृष्टिकोण का मूल्य प्रदर्शित किया है जहां उसने खनन कंपनियों को वित्तपोषण, बुनियादी ढांचे और राजनयिक नेटवर्क के माध्यम से सहयोग दिया है।

अफ्रीका में भारतीय दूतावासों को इस संदर्भ में अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए जबकि भारत को सरकार-से-सरकार के स्तर पर संबंधों का उपयोग भारतीय कंपनियों को खनन अधिकार सुरक्षित करने, नियामक कठिनाइयों को हल करने और तंजानिया, जाम्बिया और कॉन्गो लोकतांत्रिक गणराज्य जैसे देशों के साथ विश्वसनीय दीर्घकालिक संबंध बनाने में मदद करने के लिए करना चाहिए। भारत-जाम्बिया के बीच तांबे और अन्य महत्त्वपूर्ण खनिजों पर हालिया चर्चाएं ऐसे जुड़ाव के महत्व को रेखांकित करती हैं।

हाल ही में संसद की स्थायी समिति की रिपोर्ट में उल्लेख किया गया कि भारत लीथियम, कोबाल्ट और निकल के लिए 100 फीसदी आयात पर निर्भर है और अपनी ग्रेफाइट आवश्यकताओं का 25 फीसदी आयात करता है। कम से कम प्रत्येक पहचाने गए महत्त्वपूर्ण खनिज का 55 फीसदी केवल 15 देशों में केंद्रित है जिससे विविधीकरण आवश्यक हो जाता है। भारत के पास खनिज विदेश इंडिया लिमिटेड (काबिल) भी है जिसे नैशनल एल्युमीनियम कंपनी लिमिटेड, हिंदुस्तान कॉपर लिमिटेड और मिनरल एक्सप्लोरेशन ऐंड कंसल्टेंसी लिमिटेड का समर्थन प्राप्त है ताकि विदेशी खनिज संपत्तियों को हासिल करने की कोशिश की जा सके। सरकार-से-सरकार और व्यवसाय-से-व्यवसाय दोनों अवसरों की तलाश भारत सरकार कर रही है। निजी खनन पारिस्थितिकी तंत्र को इस रणनीति में शामिल किया जाना चाहिए न कि अलग से देखा जाना चाहिए। भारत की घरेलू खनन पहल को भी नए सिरे से संतुलित करने की आवश्यकता है। हालांकि, देश में या विदेश में खदानें हासिल करना तो बस शुरुआत है। ज़्यादा गंभीर कमी प्रसंस्करण की है। संसदीय समिति ने बताया कि कोबाल्ट प्रसंस्करण का 77 फीसदी, ग्रेफाइट प्रसंस्करण का 91 फीसदी, रेयर-अर्थ प्रसंस्करण का 92 फीसदी और लीथियम प्रसंस्करण का 65 फीसदी हिस्सा चीन के पास है। वह अक्सर इस फ़ायदे का इस्तेमाल भू-राजनीतिक समेत दूसरे मकसद पूरे करने के लिए करता है। इसलिए, दुनिया दूसरे विकल्प तलाश रही है और भारत एक भरोसेमंद स्रोत के तौर पर उभर सकता है। इसके लिए घरेलू रिफाइनिंग को ज़्यादा किफायती बनाने और जहां मुमकिन हो, वहां मौजूदा भारतीय रिफाइनिंग बुनियादी ढांचे में बदलाव करने की ज़रूरत है।

सरकार ने 24 महत्त्वपूर्ण और रणनीतिक खनिजों को केंद्रीय नीलामी के तहत रखा है और राष्ट्रीय महत्त्वपूर्ण खनिज मिशन शुरू किया है। फिर भी उद्योग की भागीदारी असमान रही है। उद्योग ने अपर्याप्त भूवैज्ञानिक डेटा, आर्थिक रूप से अव्यवहार्य छोटे ब्लॉकों और लंबी नियामक मंजूरियों को बाधाओं के रूप में उद्धृत किया है। सरकार को इन मुद्दों को शीघ्रता से संबोधित करना चाहिए। खनिज सुरक्षा में पुनर्चक्रण भी शामिल होना चाहिए। लीथियम, कोबाल्ट, निकल, ग्रेफाइट और दुर्लभ खनिजों की पुनर्प्राप्ति एंड-ऑफ-लाइफ बैटरियों, इलेक्ट्रॉनिक्स, औद्योगिक अपशिष्ट और खदान अपशिष्ट से घरेलू द्वितीयक संसाधन आधार बना सकती है। इसलिए भारत को एक एकीकृत रणनीति की आवश्यकता है: घरेलू अन्वेषण और खनन के साथ ही विदेशी निजी और राज्य-समर्थित परिसंपत्तियां। इसके साथ प्रसंस्करण, रिफाइनिंग और पुनर्चक्रण क्षमताओं को भी शामिल करना होगा।

Date: 09-09-26

जीडीपी के आंकड़ों की पहेली और ली कछ्यांग सूचकांक

देवांशु दत्ता, (लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

वित्त वर्ष 27 की पहली तिमाही के लिए सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी के आंकड़ों पर सहमति नहीं बन पा रही है। इन आंकड़ों में 7.8 फीसदी की वृद्धि दर्शाई गई है। इन आंकड़ों को लेकर विवाद पैदा हो गया है और यह दावा भी किया जा रहा है कि जीडीपी वृद्धि वास्तव में 3 फीसदी से भी कम रही।

यह एक नई श्रृंखला है। इसका आधार वर्ष 2011-12 के बजाय 2022-23 कर दिया गया है। पद्धतियों में और भी बदलाव किए गए हैं। वित्त वर्ष 26 की पहली तिमाही के प्रारंभिक अनुमान अगस्त 2025 में पुरानी श्रृंखला के अधीन जारी किए गए थे और उनमें जीडीपी वृद्धि 7.8 फीसदी रहने का अनुमान जताया गया था। नई श्रृंखला के तहत उसे संशोधित करके 6.9 फीसदी कर दिया गया है। यही इकलौता संशोधन नहीं था। वित्त वर्ष 12 के बजाय वित्त वर्ष 23 को आधार बनाए जाने के बाद वित्त वर्ष 24 की जीडीपी वृद्धि को संशोधित किया गया और उसे 9.2 फीसदी से कम करके 7.2 फीसदी कर दिया गया। वित्त वर्ष 24 की तुलना में वित्त वर्ष 25 की वृद्धि के अनुमान को 6.5 फीसदी से बढ़ाकर 7.1 फीसदी कर दिया गया। इसी तरह, वित्त वर्ष 26 की नॉमिनल वृद्धि दर में 3 फीसदी से अधिक कमी की गई।

वित्त वर्ष 26 की तुलना में वित्त वर्ष 27 की पहली तिमाही में नॉमिनल वृद्धि 10.3 फीसदी रही। जीडीपी डिफ्लेटर लागू करने के बाद वास्तविक जीडीपी वृद्धि 7.8 फीसदी आंकी गई। जीडीपी डिफ्लेटर एक ऐसा सूचकांक है जो बताता है कि किसी अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के सामान्य मूल्य स्तर में कितना बदलाव हुआ है। इसलिए डिफ्लेटर लगभग 2.3 फीसदी रहा। यह दर कम प्रतीत होती है। अप्रैल-जून 2026 के दौरान उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (सीपीआई) लगभग 4 फीसदी या उससे अधिक रहा जबकि थोक मूल्य सूचकांक (डब्ल्यूपीआई) 9 फीसदी से ऊपर रहा।

दोनों सूचकांकों की वस्तु सूचियां और भार अलग-अलग हैं। लेकिन डब्ल्यूपीआई में परिलक्षित कच्चे माल की लागत तैयार वस्तुओं की लागत की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ी। प्रमुख पद्धतिगत बदलाव को देखते हुए इससे एक विसंगति पैदा होती है। भारत अब दोहरी-डिफ्लेशन पद्धति का इस्तेमाल कर रहा है जिसमें अंतिम उत्पाद मसलन एक मोबाइल फोन को डिफ्लेट किया जाता है और उसके घटकों यानी इलेक्ट्रॉनिक्स, कांच आदि को भी अलग-अलग डिफ्लेट किया जाता है। पहले केवल अंतिम उत्पाद को ही डिफ्लेट किया जाता था। यहां डिफ्लेट से तात्पर्य कीमतों में हुई वृद्धि के असर को हटाना है।

जब कच्चे माल की लागत किसी अंतिम वस्तु की लागत से अधिक तेजी से बढ़ती है तो दोहरी डिफ्लेशन पद्धति एक विरोधाभासी स्थिति पैदा कर सकती है। विनिर्माण क्षेत्र का डिफ्लेटर ऋणात्मक हो सकता है भले ही हर चीज महंगी हो रही हो! संयोग से यह बात कॉरपोरेट प्रबंधन की टिप्पणियों से भी मेल खाती है जिनमें वित्त वर्ष 27 की पहली तिमाही के दौरान मार्जिन पर दबाव का बार-बार उल्लेख किया गया है। वास्तव में कंपनियां कच्चे माल की बढ़ती लागत को पूरी तरह ग्राहकों पर नहीं डाल पाई हैं।

वित्त वर्ष 27 की पहली तिमाही में विनिर्माण क्षेत्र का सकल मूल्य वर्धन (जीवीए) मौजूदा कीमतों पर 7.7 फीसदी और स्थिर कीमतों पर 9.2 फीसदी बढ़ा, जो देखने में अजीब लगता है। इसलिए विनिर्माण क्षेत्र का डिफ्लेटर लगभग 1.4 फीसदी ऋणात्मक रहा। इसने ईरान युद्ध के कारण जिंस कीमतों में आई तेज बढ़ोतरी के असर को छिपा दिया। अगर एकल-डिफ्लेशन पद्धति का इस्तेमाल किया जाता तो विनिर्माण क्षेत्र सिकुड़ रहा होता और बताई गई जीडीपी वृद्धि भी कम होती।

नई श्रृंखला, नई पद्धति और इन विरोधाभासों को देखते हुए ली कछ्यांग सूचकांक को लागू करना उपयोगी होगा। दिवंगत चीनी प्रधानमंत्री ली कछ्यांग आर्थिक गतिविधियों से मजबूत संबंध रखने वाले तीन संकेतकों पर नजर रखते थे और जीडीपी के आंकड़ों को प्राथमिकता नहीं देते थे। इनमें से एक है बिजली की खपत। वित्त वर्ष 26 की पहली तिमाही में बिजली की खपत सालाना 1.5 फीसदी घट गई थी। यह असाधारण गिरावट थी जिसका स्तर कोविड लॉकडाउन के बाद से देखने को नहीं मिला था। बिजली की कम मांग का कारण बहुत अधिक बारिश को बताया गया जिससे कूलिंग यानी एयर कंडीशनिंग की जरूरत कम हो गई थी।

वित्त वर्ष 27 की पहली तिमाही में बिजली की खपत सालाना 8.4 फीसदी बढ़ी हालांकि यह वृद्धि पिछले साल के बेहद निचले आधार पर हुई। वित्त वर्ष 27 की पहली तिमाही में बारिश सामान्य से कम रही। इससे कूलिंग की जरूरत बढ़ी। हालांकि बिजली की खपत में कूलिंग की मांग का कितना योगदान रहा इस पर आसानी से उपलब्ध कोई अध्ययन नहीं है। परंतु अगर हम कूलिंग की बढ़ी हुई मांग के लिए उदारतापूर्वक कुछ हिस्सा मान भी लें और पिछले साल के निचले आधार को भी ध्यान में रखें तो बिजली की खपत के आंकड़े आर्थिक वृद्धि की कहानी का समर्थन करते हैं।

ली कछ्यांग का दूसरा संकेतक माल ढुलाई की मात्रा है। वित्त वर्ष 26 की पहली तिमाही में रेलवे की माल ढुलाई की मात्रा सालाना 2 फीसदी बढ़ी जबकि वित्त वर्ष 27 की पहली तिमाही में यह वृद्धि 1.46 फीसदी रही। दोनों आंकड़े तेजी से बढ़ रही अर्थव्यवस्था के लिहाज से अपेक्षा से कम हैं। लेकिन वित्त वर्ष 27 की पहली तिमाही में बंदरगाहों पर माल यातायात लगभग 9 फीसदी की दर से बढ़ा जबकि वित्त वर्ष 26 की पहली तिमाही में आधार भी ऊंचा था। क्या रेलवे ने माल ढुलाई में अपनी हिस्सेदारी खो दी है?

तीसरा संकेतक है बैंक ऋण। वित्त वर्ष 26 की पहली तिमाही में बैंक ऋण सालाना 9.5 फीसदी बढ़ा था। वित्त वर्ष 27 की पहली तिमाही में बैंक ऋण 20 फीसदी बढ़ा। हालांकि, रिपोर्टिंग मानकों में बदलाव हुए थे। समान आधार

पर तुलना करें तो वित्त वर्ष 27 की पहली तिमाही में बैंक ऋण का विस्तार करीब 18-19 फीसदी रहा। यह फिर भी महत्त्वपूर्ण वृद्धि है और आर्थिक वृद्धि की कहानी का समर्थन करती है।

यह बात सहज रूप से समझ में नहीं आती कि जब महंगाई ऊंची हो तो डिफ्लेटर ऋणात्मक हो। लेकिन इसका उलटा भी उतना ही असामान्य होगा। जब भी कच्चे तेल, गैस और अन्य कमोडिटी की कीमतें गिरेंगी तो मूल्य सूचकांक नीचे आएंगे, लेकिन अगर अंतिम वस्तुओं में महंगाई इनपुट की तुलना में अधिक रही तो डिफ्लेटर में तेज उछाल आ सकती है।

इस पद्धति को सहज रूप से समझने में अभी कुछ समय लगेगा। इसलिए ली कछ्यांग के दृष्टिकोण पर कुछ अधिक गंभीरता से ध्यान देना और शायद तेज गति से बदलने वाले आर्थिक संकेतकों की सूची को और विस्तृत करने की कोशिश करना उपयोगी हो सकता है।

जनसत्ता

Date: 09-09-26

बुजुर्गों की सुध

संपादकीय

किसी भी समाज और देश में अगर बुजुर्गों का जीवन मुश्किलों तथा चुनौतियों से दो-चार हो, तो यह न केवल वहां के कल्याण कार्यक्रमों में उनके हित से जुड़े प्रावधानों की विफलता है, बल्कि एक तरह से सामाजिक संवेदनाओं पर भी सवाल अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि परिवार से उपेक्षित बुजुर्ग जब किसी वृद्धाश्रम में पहुंचा दिए जाते हैं, तो वहां भी उन्हें कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। आमतौर पर वृद्धाश्रमों में भी उनकी देखभाल को लेकर जैसी उपेक्षा या उदासीनता बरती जाती है, वह बुजुर्गों के प्रति समूचे समाज के रवैये में गिरावट का उदाहरण है। शायद यही वजह है कि सुप्रीम कोर्ट ने सोमवार को देश के सभी राज्यों को यह निर्देश दिया है कि वे वृद्धाश्रमों की स्थापना और वरिष्ठ नागरिकों को उपलब्ध कराई जा रही सुविधाओं की स्थिति के बारे में ताजा रिपोर्ट दाखिल करें। शीर्ष अदालत दरअसल करीब दस साल पहले दायर उस जनहित याचिका पर

सुनवाई कर रही थी, जिसमें बुजुर्गों के कल्याण और संरक्षण के उपायों को प्रभावी ढंग से लागू करने का अनुरोध किया गया |

कहने को भारतीय समाज में बुजुगों को बेहद सम्मानजनक स्थान प्राप्त है। ज्यादातर परिवारों में कमोबेश उनका इतना खयाल जरूर रखा जाता है, ताकि वे अपना जीवन संतोषजनक तरीके से गुजार सकें। हालांकि ऐसे लोग भी हैं, जो घर के वृद्धों की खुशी और सेहत के लिए हर संभव कोशिश करते हैं। कई बुजुर्ग अगर लंबी उम्र तक जी पाते हैं या अपना आखिरी दौर खुशी और संतोष के साथ बिता पाते हैं, तो उसमें उनका खयाल रखने वाली संतानों की बड़ी भूमिका होती है। मगर इसके बरक्स ऐसे लोग भी होते हैं, जो माता-पिता या घर के किसी भी बुजुर्ग को बोझ मानने लगते हैं। कई दंपति सिर्फ इसलिए माता-पिता से अलग रहने लगते हैं, ताकि उनकी सुविधाजनक जिंदगी में कोई दखल न हो। ऐसे लोग भूल जाते हैं कि अपनी संतान को जन्म देने से लेकर उन्हें पाल-पोस कर बड़ा करने और अपने बूते खड़ा होने लायक बनाने के लिए माता-पिता ने अपने सारे सुख की अनदेखी करके अपना पूरा जीवन झोंक दिया होता है।

इसके बावजूद ऐसी नौबत क्यों आती है कि एक सुरक्षित स्थिति में जाते ही कुछ लोग माता-पिता को अपने हाल पर अकेले रहने के लिए छोड़ देते हैं। यहां तक कि किसी बीमारी से उपजी पीड़ा और बच्चों के प्रति उनकी संवेदनात्मक भूख का भी खयाल रखना जरूरी नहीं समझते। कई परिवार घर में बुजुगों की देखभाल नहीं करने या उपेक्षा करने से आगे जाकर उन्हें किसी ऐसे वृद्धाश्रम में पहुंचा देते हैं, जहां वे अपने जीवन का बचा हुआ वक्त किसी तरह काटते हैं। इस संदर्भ में उन कानूनी तकाजों का भी खयाल रखना जरूरी नहीं समझा जाता, जिनमें माता-पिता या बुजुर्गों की देखभाल को लेकर संतानों की कुछ जिम्मेदारी तय की गई है। ऐसा शायद इसलिए भी संभव हो पाता है कि बहुत कम माता-पिता अपने प्रति संवेदनहीन हो जाने वाली संतानों को अदालत के कठघरे में खड़ा करके अपना खयाल रखे जाने का अधिकार मांगते हैं। सरकारी कल्याण कार्यक्रमों की हालत यह है कि वृद्धावस्था पेंशन या कुछ अन्य सहायता देने के दावे तो किए जाते हैं, लेकिन व्यवहार में उनसे बुजुर्गों को कितना लाभ मिलता है, इसकी सुधि लेने की जरूरत नहीं समझी जाती। परिवारों से उपेक्षित बुजुगों के लिए वृद्धाश्रम एक विकल्प जरूर है, लेकिन वहां संवेदना, संरक्षण और सम्मानजनक वातावरण सुनिश्चित कराना सरकार की ही जिम्मेदारी है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 09-09-26

जेन-जी से संवाद

संपादकीय

गुजरात के वडोदरा में महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी मैदान में हजारों पेशेवर युवाओं से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के संवाद के गहरे निहितार्थ हैं। इस समय देश में सबसे ज्यादा मुखर अगर कोई वर्ग है, तो वह जेन-जी ही है। कॉकरोच जनता पार्टी (सीजेपी) के आंदोलन ने देश-दुनिया को इसकी शक्ति का एहसास भी करा दिया है। तमाम राजनीतिक दल और संगठन अब इसे गंभीरता से लेने लगे हैं। गौर कीजिए, कुछ ही दिनों पहले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रमुख मोहन भागवत ने भी इस पीढ़ी से संवाद किया था और जेन-जी व जेन-अल्फा को पुरानी पीढ़ियों से अधिक देशभक्त करार दिया था। दरअसल, आधुनिक तकनीक की समझ के मामले में यह पीढ़ी किसी भी आयु-वर्ग के लोगों से कहीं अधिक दक्ष है और सोशल मीडिया पर सर्वाधिक सक्रिय भी है। ऐसे में, बहुत जरूरी है कि इस वर्ग की अपेक्षाओं, चिंताओं को समझा जाए और उसे एक सकारात्मक दिशा दी जाए। प्रधानमंत्री ने सही कहा है कि 'भारत का नौजवान सच की हुंकार से चलता है।' ऐसे कई उदाहरण हैं, जब इस वर्ग ने विभिन्न दलों के आईटी सेल द्वारा परोसे गए झूठ को चंद मिनटों के भीतर तार-तार कर डाला। इसलिए इसे अब भ्रमित करने की कोई भी कवायद कामयाब नहीं होने वाली।

जेन-जी की ऊर्जा को इस समय सकारात्मक मोड़ देने की बहुत आवश्यकता है और प्रधानमंत्री इस बात को भली-भांति जानते हैं। चूंकि विकसित भारत 2047 का काफी कुछ दारोमदार इसी आयु-वर्ग के कंधों पर होगा, इसलिए इन किशोरों-युवाओं को रचनात्मक बनाए रखने की बड़ी आवश्यकता है। यह सुखद है कि चरखा आंदोलन के जरिये महात्मा गांधी देश को रचनात्मकता की एक ऐसी राह दिखा गए हैं, जिस पर चलने को अपने युवाओं, नागरिकों को प्रेरित करके बड़े लक्ष्य साधे जा सकते हैं। इतिहास साक्षी है कि चरखा आंदोलन से प्रेरित भारतीयों ने कैसे मैनचेस्टर से आने वाले कपड़ों का बहिष्कार कर दिया था और क्या अमीर, क्या गरीब, सबने हुलसकर खादी को अपना लिया था। उस मुहिम से स्त्रियों का सशक्तीकरण तो हुआ ही, आजादी के आंदोलन को एक पैनी धार भी मिली। आश्चर्य नहीं कि बापू के जन्मदिन पर ही प्रधानमंत्री मोदी ने साल 2014 से स्वच्छ भारत अभियान की शुरुआत की थी। लाखों स्कूली किशोर और नौजवान इस मुहिम से जुड़े और इसका अच्छा असर हम अपने सार्वजनिक स्थलों पर अब देख रहे हैं।

निस्संदेह, कुछ विसंगतियां हमारे बच्चों को बेचैन करती हैं, आगे भी करेंगी। वे उन विसंगतियों पर खुलकर अपनी राय आज भी व्यक्त कर रहे हैं और आगे भी करेंगे। उनकी शिकायतों को पूरी संवेदना से सुनने और उन्हें सही हल देने की जरूरत हमेशा रहेगी। युवाओं से संवाद की प्रधानमंत्री की पहल इसलिए एक सुखद कवायद है। यह

देश के समूचे राजनीतिक वर्ग की नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि वह नौजवानों को हताशा या निराशा की खाई में गिरने से बचाएं। निराशा या हताशा के कमजोर पलों में ही इनमें से अनेक युवा नशाखोरी की ओर कदम बढ़ा देते हैं या फिर खुदकुशी जैसे कृत्य को अंजाम दे बैठते हैं। इसलिए उनसे लगातार संवाद करते रहने की जरूरत है। चूंकि प्रधानमंत्री देश के मुखिया होते हैं, इसलिए इस ओहदे से जब कोई अभियान शुरू होता है, तो उसकी गंभीरता और प्रभावशीलता अलग होती है। आशा है, ऐसे संवादों से हमारे किशोरों व नौजवानों में एक नई आशा का संचार होगा और वे राष्ट्र-निर्माण में अपनी महती भूमिका पहचान सकेंगे।

Date: 09-09-26

सिर्फ मुफ्त रेवड़ियां काम न आएंगी

राजऋषि सिंघल, (वरिष्ठ पत्रकार)

जंतर मंतर पर जेन-जी के आंदोलन ने न केवल तत्कालीन शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान को इस्तीफा देने के लिए मजबूर किया, बल्कि कई अन्य उपलब्धियां भी इसके नाम रहीं। पहली और सबसे दिलचस्प उपलब्धि तो यही रही कि इसने छात्रों की उस क्षमता को पुनर्जीवित करने का काम किया कि शिक्षा प्रणाली की ढांचागत खामियों पर वे अपनी चिंता जाहिर कर सकें; अपने भविष्य के बारे में सत्ता प्रतिष्ठान से सवाल कर सकें और अपने नागरिक अधिकारों की मजबूत दावेदारी पेश कर सकें।

दूसरी, इसने एक बार फिर उन अंतर्विरोधों और विरोधाभासों को रेखांकित किया, जो हमारे समाज और हमारी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस आंदोलन ने उस मुद्दे पर फिर से देश का ध्यान केंद्रित किया है, जिससे वह भटक गया था। 'क्या मुफ्त योजनाओं से व्यवस्था की कमियों पर पर्दा डाला जा सकता है?'

पिछले दशक में छात्रों को 'बच्चा' समझकर राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया था। एक ओर तो उन्हें देश की सबसे बड़ी राजनीतिक गतिविधि, यानी चुनावों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया, जबकि दूसरी ओर उनकी राजनीतिक अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों को प्रतिबंधित करने के लिए दमनात्मक कार्रवाई की गई। अनेक सत्ताधारी पार्टियों के निरंकुश नेताओं ने राजनीतिक रूप से जागरूक छात्रों की अभिव्यक्तियों को दबाने के लिए दमन का सहारा लिया है। कुछ प्रमुख विश्वविद्यालयों में तो ऐसे मौकों पर छात्रों के खिलाफ हिंसा का भी सहारा लिया गया।

सत्ता प्रतिष्ठानों में हरेक स्तर पर छात्र आंदोलनों के प्रति हिकारत का भाव देखा जा सकता है, जबकि इनमें से कई आंदोलन ऐतिहासिक रूप से राजनीतिक परिवर्तन लाने में कामयाब रहे हैं। ऐसे ही छात्र आंदोलन ने पेरिस

में 1968 में 'चार्ल्स द-गॉल सरकार' को व्यापक सामाजिक परिवर्तन के लिए मजबूर किया था। छात्र आंदोलन ने ही 1998 में जकार्ता में तानाशाह राष्ट्रपति सुहार्तो के 32 साल के शासन का अंत कर दिया। वियतनाम और कंबोडिया में अमेरिका के बढ़ते हमलों के खिलाफ 1970 में शिक्षण-परिसरों में हुए विरोध-प्रदर्शनों ने राष्ट्रव्यापी युद्ध विरोधी भावना पैदा की। इसी तरह, दिल्ली में छात्रों द्वारा शुरू किए गए आंदोलन ने देश के कई अन्य शैक्षणिक परिसरों को अपनी चपेट में ले लिया। इसने विभिन्न राज्यों में स्कूली बच्चों को बेहतर बुनियादी सुविधाओं की मांग करने के लिए भी प्रेरित किया है।

जेन-जी आंदोलन ने एक जटिल विरोधाभास की ओर भी हमारा ध्यान खींचा है। वह है- तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था, उत्पादन और अरबपतियों की संख्या के साथ ही पढ़े-लिखे बेरोजगार युवाओं की बढ़ती फौज और विषमता। दुनिया में चल रहे युद्धों, महंगाई, निजी क्षेत्र की निवेश में कोताही और रोजगार के कम होते अवसरों के बीच 2026-27 की पहली तिमाही में 7.8 प्रतिशत की जीडीपी दर ने इस विरोधाभास को और भी पुख्ता किया है। नीट पेपर लीक के कारण इस साल छात्रों का विरोध-प्रदर्शन शुरू हुआ, लेकिन इसने बाकी छात्रों को भी कमजोर, भ्रष्ट शिक्षा-व्यवस्था और सीमित रोजगार अवसरों के प्रति अपनी निराशा जाहिर करने का मंच दे दिया। इस समय देश में 15 से 29 साल की उम्र के लाखों युवा या तो बेरोजगार हैं या अपनी योग्यता से कमतर नौकरी कर रहे हैं या कम वेतन वाली नौकरियों में फंसे हुए हैं। भारत में तेजी से बढ़ती आबादी बोझ बनती जा रही है। यह एक सियासी बोझ है।

विडंबना यह है कि बुनियादी ढांचे की कमियों को ठीक करने के बजाय, सत्ता प्रतिष्ठान मुफ्तखोरी को ही तेजी से बढ़ाने में लगे हैं। लगभग 10 राज्यों ने पहले ही मुफ्त राशि हस्तांतरण के लिए एक नई श्रेणी जोड़ी है- पढ़े-लिखे बेरोजगार युवा। यह 'बिना शर्त नकद हस्तांतरण (यूसीटीज)' के अलावा है, जो अब आम चलन सा बन गया है। संविधान के 'नीति-निदेशक सिद्धांतों' में बताई गई बुनियादी सेवाएं उपलब्ध कराने में विफल सरकारों के पास गरीबी दूर करने, लोगों की बुनियादी आमदनी को सहारा देने और जरूरी खपत को बनाए रखने के लिए 'यूसीटीज' ही एकमात्र आधार बचे हैं। इनमें से ज्यादातर महिलाओं को नकदी हस्तांतरण पर केंद्रित हैं, लेकिन पैसे कैसे खर्च किए जाएं, इस पर कोई रोक-टोक नहीं होती।

साल 2025-26 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार, 2022-23 और 2025-26 के बीच यूसीटीज वाले राज्यों की संख्या पांच गुना बढ़ गई। राज्यों में केवल महिलाओं पर केंद्रित ऐसी योजनाओं के लिए बजट आवंटन अब 20,000 करोड़ रुपये के करीब है। जब नकद हस्तांतरण का मकसद सिर्फ चुनावी फायदा उठाना होता है, तब लोगों में शक और निराशा पैदा होती है। मिसाल के तौर पर, महाराष्ट्र की 'माझी लाडकी बहीण योजना' नवंबर 2024 में विधानसभा चुनावों से ठीक पांच महीने पहले जून में शुरू की गई थी, लेकिन जब वही गठबंधन सरकार दोबारा सत्ता में आई, तो 40 प्रतिशत लाभार्थियों को इस योजना से बाहर कर दिया गया। पश्चिम बंगाल में नई सरकार महिलाओं के लिए चल रही एक यूसीटी से लगभग 60 प्रतिशत लाभार्थियों को हटा रही है और अपनी राजनीतिक पकड़ मजबूत करने के लिए एक नई योजना लाने की सोच रही है।

निस्संदेह, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि यूसीटीज समाज के कमजोर वर्गों, सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर महिलाओं या किसानों के लिए बहुत जरूरी हो गए हैं। गैर-लाभकारी संस्था 'प्रोजेक्ट डीप' के अनुसार, 'मुफ्त योजनाएं सम्मान, फैसले लेने की आजादी व आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देती हैं, जिससे जेंडर, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और अन्य अहम क्षेत्रों में अच्छे नतीजे मिलते हैं।' यह भी सच है कि इनसे पढ़े-लिखे बेरोजगारों को अस्थायी आर्थिक मदद मिलती है। हालांकि, यह स्थायी समाधान नहीं है। खासकर तब, जब टिकाऊ आर्थिक विकास और रोजगार पैदा करने वाले जरूरी बुनियादी ढांचा बनाने में मेहनत करने के बजाय सरकारें ऐसी योजनाएं लाने लगें।

इसलिए, इस बात की संभावना अब कम है कि बेचैन नौजवान इसे चुपचाप अपनी किस्मत मानकर बैठ जाएंगे या स्थायी और पूर्णकालिक नौकरी के अवसर हासिल करने के बजाय यूसीटी से संतुष्ट हो जाएंगे, विरोध-प्रदर्शन करना छोड़ देंगे और सत्ताधारी पार्टियों को फिर से अपना वोट देंगे। यह सब बहुत लंबे समय तक चलने वाला नहीं है और यह गुब्बारा बहुत जल्द ही फटने वाला है।

Date: 09-09-26

हिमालय को बांटकर देखने की नीति बदलनी पड़ेगी

जयसिंह रावत, (वरिष्ठ पत्रकार)

राजनीतिक नक्शे हिमालय को कई देशों में बांटते हैं, लेकिन प्रकृति इन सीमाओं को नहीं मानती। तिब्बत में पैदा हुआ जल-प्रवाह भारत, नेपाल या भूटान में संकट बन सकता है और ऊंचे हिमालय की किसी निर्जन घाटी में टूटी हिमनदीय झील सैकड़ों किलोमीटर नीचे बसे लोगों के लिए कुछ ही घंटों में विनाश का कारण बन सकती है। ऐसे में, हिमालय को अलग-अलग देशों में बंटे पर्वत-खंड के बजाय साझा पर्यावरणीय और मानवीय सुरक्षा क्षेत्र के रूप में देखना समय की मांग है।

अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक संस्था इसीमोड के मुताबिक, हिंदूकुश-हिमालय क्षेत्र में बसे देशों में लगभग 24 करोड़ लोग रहते हैं, जबकि इसकी नदी प्रणालियों और प्राकृतिक संसाधनों पर नीचे के क्षेत्रों में रहने वाले लगभग 1.65 अरब लोगों का जीवन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निर्भर है। यही कारण है कि हिमालय में घटने वाली किसी पर्यावरणीय घटना को केवल स्थानीय दुर्घटना मानना गंभीर भूल है। नेपाल के रसुवा क्षेत्र में भोटेकोशी-त्रिशूली नदी में आई विनाशकारी बाढ़ ने इस वास्तविकता को फिर से उजागर किया है। ऐसी घटनाएं बताती हैं कि हिमालय में बहु-आपदा चेतावनी प्रणाली विकसित करनी ही होगी। इस घटना को उत्तराखंड की 2021 की ऋषिगंगा-धौलीगंगा आपदा, सिक्किम की 2023 की दक्षिण ल्होनक झील व तीस्ता घाटी की त्रासदी समेत हिमालय में हाल के वर्षों की दूसरी घटनाओं से अलग नहीं देखा जा सकता है। इनकी प्रकृति अलग-अलग हो सकती है, लेकिन संदेश एक ही है।

इसीमोड के अनुसार, 2011 से 2020 के बीच हिंदूकुश-हिमालय में ग्लेशियरों के सिकुड़ने की गति 2001-10 की तुलना में लगभग 65 प्रतिशत तेज रही। तापमान बढ़ने के साथ ग्लेशियर पिघल रहे हैं, नई हिमनदीय झीलें बन रही हैं और पुरानी झीलों का आकार बढ़ रहा है। मोरेन से घिरी ऐसी झीलों में यदि हिमस्खलन या विशाल चट्टान गिरती है, तो अचानक भारी मात्रा में पानी निकल सकता है और 'ग्लेशियल लेक आउटबर्स्ट फ्लड' पैदा हो सकती है। समस्या केवल तापमान वृद्धि तक सीमित नहीं है। उद्योगों, डीजल इंजनों, ईंट-भट्टों, जंगल की आग और जैव ईंधन के अधूरे दहन से पैदा होने वाला ब्लैक कार्बन हिमालय की बर्फ पर जमकर उसकी सूर्य प्रकाश परावर्तित करने की क्षमता घटाता है। इससे बर्फ अधिक ऊष्मा सोखने लगती है और पिघलने की उसकी गति बढ़ जाती है। ऐसे में, केवल आपदा के बाद राहत, मुआवजा और पुनर्निर्माण की नीति पर्याप्त नहीं हो सकती। चीन, भारत, नेपाल, भूटान, पाकिस्तान और बांग्लादेश सहित हिंदूकुश-हिमालय से जुड़े देशों को मिलकर एक अंतरराष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण व आपदा सुरक्षा तंत्र विकसित करना चाहिए। अफगानिस्तान और म्यांमार को भी इसमें शामिल किया जा सकता है।

इस तंत्र की पहली प्राथमिकता संयुक्त वैज्ञानिक निगरानी होनी चाहिए। ग्लेशियरों के पिघलने की गति, हिमनदीय झीलों के आकार, जलस्तर, अस्थिर ढलानों, हिमस्खलन क्षेत्रों, भूस्खलन और नदी अवरोधों की निगरानी उपग्रहों, सिंथेटिक एपर्चर रडार, जलस्तर मापक यंत्रों और भूकंपीय सेंसरों से की जा सकती है। दूसरा जरूरी कदम सीमा-पार पूर्व चेतावनी प्रणाली है। यदि तिब्बत या नेपाल के किसी दुर्गम क्षेत्र में भूस्खलन से नदी अवरुद्ध हो और प्राकृतिक बांध टूटने की आशंका हो, तो सूचना तत्काल नीचे स्थित देशों तक पहुंचनी चाहिए। तीसरी, साझा हिमालयी वैज्ञानिक डाटा बैंक की स्थापना है। इसी के साथ सीमा साझा करने वाली नदी-घाटियों में बड़े बांध, सुरंग, खनन, राजमार्ग और नदी मोड़ने जैसी परियोजनाओं के लिए साझेदार देश के पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन पर भी विचार होना चाहिए। विडंबना है कि अंटार्कटिका जैसे निर्जन क्षेत्र के लिए दुनिया ने अंतरराष्ट्रीय संधियां और वैज्ञानिक सहयोग की व्यवस्था बनाई है, जबकि 'तीसरे ध्रुव' हिमालय के लिए अभी तक प्रभावी बहुपक्षीय सुरक्षा ढांचा नहीं है।

हिमालय में अगली बड़ी आपदा कहां जन्म लेगी, यह शायद पता न हो, पर खतरा बढ़ जरूर रहा है। इसलिए अगली त्रासदी की प्रतीक्षा करने के बजाय हिमालयी देशों को साझा विज्ञान, साझा सूचना और साझा सुरक्षा की स्थायी संस्थागत व्यवस्था बनानी चाहिए।